

## मौजूदा राजनीतिक माहौल में 'महाभोज' के मायने

### सारांश

जब-जब राजनीति लड़खड़ाने लगती है, साहित्य उसे सहारा देता है— यह बात कभी दिनकर ने भारतीय संसद की सीढियों चढ़ते समय तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से कही थी। जब आज की सत्ता-राजनीति देखती हूँ तो लगता है कि दिनकर का यह कथन कितना मौजू है। इसी क्रम में जब साहित्य के पन्ने पलटती हूँ, खास कर कथा साहित्य के, तो मन्नू भंडारी का 'महाभोज' सहसा याद हो आता है। वर्षों पहले लिखे गए इस उपन्यास में राजनीति के बढ़ते आपराधीकरण का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया गया है। मुझे लगता है कि 'महाभोज' के बाद अब तक कोई दूसरा 'महाभोज' नहीं लिखा जा सका है, जबकि आज राजनीति पहले से अधिक भ्रष्ट और जनविरोधी-न्यायविरोधी होती जा रही है। आइए, 'महाभोज' के आइने में मौजूदा राजनीति के चेहरे को पढ़ने की कोशिश करें।

**मुख्य शब्द** : राजनीति, आपराधीकरण, साहित्य।

### प्रस्तावना

स्वतंत्रता के एकहत्तर साल बाद देश की राजनीतिक स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर आ गया है। सत्तासीन राजनीतिक पार्टियों का देश के लगभग 80 फीसदी हिस्से पर शासन कायम हो गया है। उसकी तुलना की नीतियों और शासनतंत्र को लेकर कई सवाल उठ खड़े हो रहे हैं। कांग्रेस सहित अधिसंख्य राजनीतिक पार्टियाँ हाशिये पर चली गई हैं। देश के विकास का मायने सिर्फ तकनीकी विकास होकर रह गया है। सब कुछ डिजिटल हो रहा है। एक तरफ लगातार तेज गति से चलनेवाली अधिसंख्य यात्री ट्रेन लगातार पटरियों से उतर रही हैं, उसी दौर में जापान के सहयोग से पटरी के ऊपर बुलेट ट्रेन चलाने की योजना को अंतिम रूप दिया जा रहा है। देश को विश्व में सबसे शक्तिशाली बनाने के नाम पर योजनाएँ व निर्णय लेनेवाली सरकार की नाक के नीचे ऑक्सीजन के अभाव में तीन दिनों में सौ से अधिक नौनिहाल मौत की नींद सो जाते हैं। तब जाहिर है, इस समय साहित्य की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, खासकर राजनीति को केंद्रित कर साहित्य का सृजन अनिवार्य हो जाता है। मौजूदा दौर में राजनीतिक कहानियाँ तथा उपन्यासों का सर्वथा अभाव दिखता है। पिछली सदी के सातवें दशक में मन्नू जी का उपन्यास 'महाभोज' की प्रासंगिकता और अधिक मजबूत होने लगती है तब जरूरत आन पड़ती है कि उस कालजयी रचना को मौजूदा परिप्रेक्ष्य में नये सिरे से समझा जाये और उसके संकेतों की दिशा में बेहतर माहौल बनाने की कवायद शुरू हो।

आजादी के 32 साल बाद मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' का लेखन शुरू किया तो वह देश के बदलते मायने की परिस्थितियों से रू-ब-रू हो रही थी, लेकिन वह अपने पहले ही राजनीतिक उपन्यास में भारत की पतनगामी राजनीति के पहलुओं को देख पा रही थी। जो इस उपन्यास के प्रकाशित होने के 45 सालों बाद भी मौजूदा राजनीतिक परिस्थितियों में पूरी तरह से प्रासंगिक है। हालांकि इस समय मौजूदा राजनीति पर लिखना और भी अधिक दुरुह हो गया है, लेकिन उन्होंने उस दौर में भी दुरुह चुनौती को स्वीकार किया था। उन्होंने जनतंत्र में राजनीति के गिरते स्तर, चारित्रिक पतन तथा राजनीति के अपराधीकरण को समझ लिया था जो इस समय देश व राष्ट्र के दायरे से बढ़ कर साम्राज्यवादी शक्तियों तथा कॉरपोरेट कंपनियों के हाथों में केंद्रित हो गई है। उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से इनके बीज तत्व की तलाश कर ली थी।

मौजूदा साहित्य में राजनीति को लेकर जो रिकिता दिख रही है, उसका सबसे बड़ा कारण यह सोच है कि सत्ता के विमुख जाने का रिस्क कौन ले ? जनपक्षधर शक्तियों पर हो रहे हमलों के बीच खुद को सांसत में डालने तथा साम्राज्यपरस्त व सांप्रदायिक शक्तियों के निशाने बनने से बेहतर यह है कि



**मीना कुमारी**

प्राध्यापिका,  
हिन्दी विभाग,  
टीडीबी कॉलेज,  
रानीगंज, पश्चिम बर्दवान,  
पश्चिम बंगाल

इस पहलू को छुआ ही नहीं जाए  
या फिर दरबाररत हो जाया जाए।

लेकिन इस मनोवृत्ति को समझते हुए मन्नू जी ने इस चुनौती को स्वीकार किया।  
'महाभोज'

के बारे में मन्नूजी लिखती हैं— अपने व्यक्तिगत दुख—दर्द, अंतर्द्वंद्व या आंतरिक नाटक को देखना बहुत महत्वपूर्ण, सुखद और आश्वस्तदायक तो मुझे भी लगता है। मगर जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना, या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यपद और किसी हद तक अश्लील नहीं होने लगता? संभवतः इसी उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाला परिवेश के व शोध के रूप में देखती हूँ।<sup>1</sup>

### अध्ययन का उद्देश्य

महाभोज एक सशक्त कृति है क्योंकि वह समकालीन राजनीति में चल रही गतिविधियों को मन्नू जी ने यह गहराई से नापा है। आज के दौर में राजनीति चंद नेताओं के हाथों की कठपुतली है। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत आज की राजनीति पर चरितार्थ होती है इसी यथार्थ को महाभोज में मन्नू जी ने चित्रित करती है। इस कृति में मन्नू जी ने राजनीति का भ्रष्ट, धिनौना और लज्जित करने वाला रूप सबके समक्ष रखा है। निःसन्देह 'महाभोज' कल की और आज की राजनीति की विदूषता और गतिविधियों का लेखा— जोखा प्रस्तुत करती है।

स्वतंत्रता के संघर्ष के दिनों में राजनीति के अपने खास मायने थे। यदि किसी नेता या शासक वर्ग के अपने स्वार्थ भी थे तो राष्ट्र प्रेम की मजबूत धारा के बीच उनके अपने स्वार्थ का कोई स्थान नहीं था। नेतृत्व कर रहे नेताओं को न सिर्फ अपनी साख बनानी थी, बल्कि साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ते हुए आजाद देश की जनता के सपनों को भी साकार करना था। समाज के हर तबके के सामने अपने स्वार्थ से बढ़ कर राष्ट्र और जनता का स्वार्थ था। यही कारण है कि आजादी के पहले राजनीति को लेकर आम जनता के मन में विशेष आदर का भाव था। लेकिन, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश का शासन जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में आ गया। देश तथा सत्ताशील पार्टी काँग्रेस का नेतृत्व करनेवाले प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने देश को विकास के रास्ते पर तो डाल दिया, लेकिन देश के भीतर जो सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक बदलाव होना चाहिए था, उस मोर्चे पर कोई कार्य नहीं हो सका। आजादी के पहले यह कार्य महात्मा गाँधी के जिम्मे था, लेकिन उनकी हत्या के बाद काँग्रेस वैचारिक रूप से पूरी तरह बिखर गई। कोई दर्शन ही नहीं रहा। विकास के नाम पर, खुशहाली के नाम पर आर्थिक नीतियाँ बनती रही। सामाजिक स्तर पर कोई सार्थक बदलाव नहीं होने के कारण समाज के हित तथा निजी हित के बीच टकराव शुरू हो गया। समाजविरोधी शक्तियों ने अपने सशक्तिकरण के लिए राजनीति को माध्यम बनाना शुरू कर दिया, जिसके परिणाम काफी घातक निकले।

यही कारण है कि आजादी के 15 साल बीतते—बीतते जनता का मोह काँग्रेस से टूटने लगा। काँग्रेस का नेतृत्व कर रहे नेताओं में पार्टी और देश के

प्रति लगाव कम होने लगा तथा व्यक्तिगत स्वार्थ सर चढ़ कर बोलने लगा। परिणामस्वरूप जनता काफी हताश हो गई। पूरे देश में गैर काँग्रेसवाद का माहौल बनने लगा। काँग्रेस की इस स्थिति से जहाँ राजनीतिक शून्यता का माहौल बनने लगा, स्वार्थवादियों के लिए सुनहरा मौका मिलने लगा, वहीं इस आजादी को मुक्ति के मार्ग में ले जाने की छटपटाहट भी कहीं—न—कहीं दिखने लगी। स्वाभाविक रूप से यह छटपटाहट राजनीति के शीर्ष पर नहीं दिख कर जमीनी स्तर पर दिख रही थी। समाज में दलित व कुचले तबके में भी जागरूकता आने लगी थी। काँग्रेस के विकल्प में नये विचार व नये संघर्ष दिखने लगे थे। शीर्ष पर गैर काँग्रेसी राजनीति के स्वर मुखर होने लगे थे। इन्हीं परिस्थितियों में मन्नू जी ने वैकल्पिक राजनीति की जरूरत को शिद्दत से महसूस किया।

मन्नू जी 'महाभोज' में एक जगह लिखती हैं — राजनीति गुंडागर्दी के निकट चली गई है। जिस देश में देवतुल्य राजनेताओं की परंपरा रही हो, वहाँ राजनीति का ऐसा पतन। कभी—कभी मन में एकदम वैराग्य जाग जाता है, पर राजनीति में जहाँ तक अपने को धँसा लिया, वहाँ से निकल भी तो नहीं सकते। निकलने का सीधा अर्थ है— हार मान लेना, और जीवन में एक यही तो बात है कि जिसे वह कभी नहीं मान सकते। पिछले चुनाव में हार कर भी मन में वे उस हार को एक दिन के लिए भी स्वीकार नहीं कर सके। उस हार को जीत में बदलना ही है, जो हो...जैसे भी हो। कृत संकल्प है उसके लिए।<sup>2</sup>

'महाभोज' में मन्नू जी ने जिस सरोहा गाँव को अपना कथानक बनाया है, वह उत्तर प्रदेश का गाँव है तथा शहर से 20 किलोमीटर दूर है। इस गाँव में भी पिछड़ी और दलित समाज के बीच जागरूकता फैल रही है। वह सत्ताशील राजनीति को नकार कर वैकल्पिक राजनीति के सपने देख रहा है। बीसू की हत्या हो जाती है। उसका मित्र बिंदा हत्यारे के रूप में गिरफ्तार होता है। ये दोनों शोषित दलित जन के प्रतिनिधि हैं। बीसू का अपराध यह है कि वह हरिजन टोले में घूम—घूम कर उन्हें संगठित व सचेत करता है। बिंदा भी बीसू के रास्ते पर चलता हुआ दिखाई देता है। ये दोनों सच्चे अर्थों में जीना चाहते हैं। न सिर्फ जीना चाहते हैं, बल्कि जीवन के अर्थ को सम्मान के साथ जोड़ना चाहते हैं। बिंदा के शब्दों में — जो अब जिंदा है, वे जी नहीं सकते, वे मार दिये जाते हैं, कुत्तों की मौत। इसके माध्यम से मन्नूजी महत्वपूर्ण सवाल उठाती है कि क्या इस राजनीति में मूल्यों को धारण करने की कोई संभावना नहीं? 'महाभोज' इसी प्रश्न की खोज है। यह महज संयोग भी नहीं है कि मन्नू जी सत्तर के दशक में ही 21वीं सदी के भारत की राजनीति का मूल्यांकन कर लेती हैं। वर्ष 2017 में इन्हीं जनविरोधी सत्ताशील शक्तियों के खिलाफ बंगलौर की महिला पत्रकार गौरी लंकेश संघर्षरत दिखती हैं तो उसकी हत्या उसके घर के पास खुलेआम कर दी जाती है। सत्ताशील शक्तियों सातवें दशक में संघर्षशील शक्तियों की हत्या करती तो जरूर थी, लेकिन वे इसे 'कुत्ते की मौत' नहीं कह पाती थी। लेकिन बिंदा के शब्दों की तर्ज पर इन शक्तियों ने

गौरी लंकेश की हत्या के चंद घंटों बाद ही उन्हें 'कुतिया' का संबोधन दे डाला तथा कहा कि उसे उसके कर्मों की सजा मिल गई है। राजनीति में इतनी गिरावट को मन्त्रू जी ने काफी पहले ही समझ लिया था।

'महाभोज' में राजनीति के अपराधीकरण के प्रति भी चिंता दिखती है। जोरावर सिंह जनतंत्र की समूची प्रक्रिया के प्रहसनात्मक कार्यवाही का बयान करता है। यह जनतंत्र समाज के शक्तिशाली लोगों के हितों से संचालित है। इस जनतंत्र में अपराध और अपराधियों को संरक्षण देने वाली राजनीति की भूमिका केंद्रीय है। जोरावर सिंह व दा साहब के संवाद के माध्यम से मन्त्रू जी ने राजनीति तथा अपराध की अंतरंगता का उद्घाटन किया है— 'भाव बढ़ा रहे हो अपना? दा साहब ने उतने ही काइयांपन से पूछा।' सत्तर के दशक में भले ही राजनीति अपराधियों से तोल-मोल करती दिखती है। लेकिन बाद के दशकों में अपराधी राजनेताओं से आगे निकल जाते हैं। जैसे-जैसे संसद तथा विधानसभाओं में चुनाव जीतने के लिए पैसे के साथ ही बल का उपयोग बढ़ने लगा, जनता की भावनाओं को ताक पर रख कर बूथ लूटे जाने लगे। तो अपराधियों को लगने लगा कि चुनाव में तो सारा कार्य वे स्वयं करते हैं और जीत राजनेता की होती है। सत्ता का सारा सुख नेता भोगते हैं। तो क्यों न थोड़ी सी हिम्मत दिखा कर वे ही राजनीति में शामिल हो जायें। पहले राजनीति ने अपराधियों का उपयोग किया। राजनीति ने अपराधीकरण को बढ़ावा दिया तो अपराधियों ने अपराध का राजनीतिकरण शुरू कर दिया। इन अपराधियों ने विभिन्न सामंती भावनाओं, जाति, धर्म तथा सामाजिक विसंगतियों को आधार बना कर समाज में खुद को रोबिनहुड बनाना शुरू कर दिया। वैकल्पिक राजनीति की छटपटाहट में जनता को कोई न कोई हिस्सा इनके पक्ष में खड़ा होता गया। वर्ष 1990 आते-आते देश की राजनीति में अपराधियों की सशक्त उपस्थिति दर्ज हो चुकी थी। अब तो संसद और विधानसभाओं में 30 फीसदी तक जन प्रतिनिधि की पृष्ठभूमि आपराधिक है। इन अपराधों में अपहरण, हत्या, लूट तथा नरसंहार जैसे अपराध शामिल हैं। लेकिन वर्ष 1990 के बाद देश में उदारीकरण का दौर शुरू हुआ, उसके कारण संसद में पूँजीपतियों का भी प्रवेश मजबूती से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होने लगा। इस समय संसद तथा विधानसभाओं में इन सामंती, आपराधिक तथा धन्ना सेठों का प्रतिनिधित्व निर्णायक स्थिति में है। इसे मन्त्रू जी ने उसी समय समझ लिया था।

मन्त्रू जी का यह उपन्यास राजनीतिक होने के बाद भी बौद्धिक या दार्शनिक नहीं है। वे राजनीति की क्रूरता, सत्ता के केंद्रीकरण तथा राजनीति के अथाह पतन को चित्रित करती हैं। वे पूरी सघनता के साथ राजनीति की क्रियात्मक गतिविधियों को अपने केंद्र में रखती हैं। यही कारण है कि उनका यह उपन्यास जमीनी सच्चाई बयां करता है, जो इसके कालजयी होने का मुख्य कारण भी है।

उपन्यास के अंतिम भाग में मन्त्रू जी ने लिखा है— 'शहर के अलग-अलग भागों में अलग-अलग ढंग से जश्न मनाती व मौज में डूबी इस विशाल बिरादरी में कटे हुए तीन लोग हैं सक्सेना, लोचन बाबू व बिंदा। पूरी तरह

उपेक्षित, परित्यक्त और एक तरफ फेंके हुए, यह आजादी के बाद का भारत है, जिसमें आजादी व मनुष्य के सपनों के हक में लड़नेवाले लोग निर्वासित, उपेक्षित तथा परित्यक्त हैं' लोचन बाबू के लिए उन्होंने लिखा है — 'हजार हजार प्रश्नों के सलीब पर टंगा हुआ उनका मन... अपने आसपास व चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उसे आँख मूँद कर स्वीकार करते रहे। एकदम उदासीन व तटस्थ होकर रह सकता है कोई आदमी।'

मन्त्रू जी की राजनीतिक चेतना का पूर्ण विकास हम 'महाभोज' उपन्यास में देख सकते हैं। इस उपन्यास में लेखिका ने राजनीति को सत्ता-विलास, अर्थ प्राप्ति का अखाड़ा माननेवाले मंत्रियों को पूरी तरह नग्न करके जनता के सम्मुख उपस्थित किया है। इन स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, पदलोलुप, दमनकारी, बर्बर मंत्रियों के लिए कौन सी सजा तय की जाये, इस बात की ओर संकेत किया है। आज के युग में चुनाव एक आवश्यक राजनीतिक प्रक्रिया है। आज शासनतंत्र जनतंत्र से जुड़ता है, केवल चुनाव के समय। उच्च पद पर आसीन नेता नई-नई योजनाएँ जन के हित में नहीं, अपने वोट बैंक को बढ़ाने के लिए लाते हैं।

मन्त्रू जी ने इस समस्या का चित्रण 'महाभोज' उपन्यास में बड़े फलक पर किया है। इस उपन्यास में दलितों की झोपड़ियाँ जलाई जाती हैं। वे मनुष्य के रूप में कम, वोटर के रूप में अधिक नजर आते हैं। जो राजनीति के बाहुबली लोगों को वोट नहीं देते, तो उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। वे इतने आतंकित हैं कि गवाही भी नहीं दे सकते। पुलिस भी उन्हें प्रताड़ित करती है। वहाँ कुछ जोपड़ियों में आग लगा दी गयी थी, आदमियों सहित। दूसरे दिन लोगों ने देखा तो झोपड़ियाँ राख में बदल चुकी थी और आदमी कबाब में। लोग दौड़े-दौड़े थाने पहुँचे, उन्होंने यह कहकर बात टाल दी कि थानेदार साहब के आने के बाद ही मौके पर आयेगे और तहकीकात होगी। इसके बाद पता नहीं इन गाँववालों को कौन सा जहरीला साँप सूँध गया कि सबके मुँह सिल गये। बस सब की साँसों के साथ निकला हुआ एक गुस्सा, एक नफरत भरा तनाव बन कर हवा में यहाँ से वहाँ तक सनसनाता रहा।<sup>3</sup>

आज के नागरिक समाज में सत्ता की चाहे कोई भी व्यवस्था क्यों न हो, राजनीति विहीनता की कल्पना नहीं की जा सकती है। कोई भी सत्ता अपनी राजनीति के अनुसार व्यवस्था बनाती है। भले ही भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था हो, किंतु राजनीति में कोई व्यक्ति अपने को अलग नहीं रख सकता। राज्य और समाज के बीच ही व्यक्ति का जीवन चलता है। स्पष्ट है कि मन्त्रू जी ने अपने सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'महाभोज' में इस राजनीतिक हस्तक्षेप की गहरी पड़ताल की है। गाँव, जो प्रायः लोकजीवन के आसपास हुआ करता था, अब सत्ता और राजनीति का केंद्र बनता जा रहा है। कारण चुनावी राजनीति में गाँव एक बड़ा फैक्टर बन जाता है। गाँव की उपेक्षा कर चुनावी वैतरणी को पार नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि शहर से 20 किलोमीटर दूर सरोहा गाँव एक प्रतीक के रूप में उभरता है और राजनीतिक दुष्कर्म की राई रत्ती को खोल कर रख देता है।

मन्त्रू जी ने 'महाभोज' में वर्तमान के इसी कट्ट सत्य का साक्षात्कार कराया है। दा साहब ऐसे नेता है, जिनकी करनी और कथनी में घोर भिन्नता है। सरोहा गाँव, जो चुनाव का केंद्र है, वो आज इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि वहाँ छोटी से छोटी बात हो जाती है तो भी दोनों पक्ष के लोग अपने हित के लिए इस्तेमाल करने पर तुल जाते हैं। मुख्यमंत्री दा साहब का लखन इस सीट पर खड़ा होनेवाला है। सरोहा में कुछ ही दिन पहले हरिजनों के घर जलाये गये और उसके बाद बिसू की हत्या। इन घटनाओं के कारण वहाँ का वातावरण तनावपूर्ण है, जिसे अपने अनुकूल बनाने के लिए दा साहब सरोहा में जाते हैं। बिसू के पिता हीरा को अपने पास स्टेज पर बिठाते हैं। उनके द्वारा 'घरेलू गृह योजना' का उद्घाटन करवाते हैं। गरीबों को आर्थिक सहायता देकर वह चुनाव में जीतना चाहते हैं। पर लोगों के सामने इस बात की भनक भी नहीं लगने देते। वे गाँव के लोगों से कहते हैं— घरेलू उद्योग की इस योजना से उनकी गरीबी पर मरहम जरूर लगाया जा सकता है। पर प्रियजनों के बिछुड़ने पर नहीं। आदमी का दुःख जिस दिन पैसों से दूर होने लगेगा, इन्सानियत उठ जायेगी दुनिया से।<sup>4</sup>

डॉ. गुलाब राय मन्त्रू जी के 'महाभोज' के संबंध में लिखते हैं— भारतीय राजनीति में अपराध के इस नये तत्व के आने से और सत्तारूढ़ दल समेत सभी विरोधी दल मात्र एक 'चुनाव संयंत्र' में तब्दील हो जाने की वजह से जिस प्रकार देश का निर्माण हुआ है, उसके बीच आम आदमी की त्रासदी, करुणा—ममता, संघर्ष और पीड़ा का चित्रण सच्चाई से किया है। राजनीतिज्ञों की अपनी महानता, औदात्य तथा गंभीरता की आड़ में जो वास्तविक तस्वीर है— वह छोटे-छोटे ब्योरे के माध्यम से उभारी गई है ताकि हम इस मुद्दे पर सोचें कि देश के राजनीतिज्ञों का यह चरित्र कहाँ जाकर विराम लेगा। आखिर इस दौरान देश के आम आदमी की नियति क्या होगी, जबकि हरिजनों, खेत मजदूरों के नाम से जाने-जानेवाले आम आदमी पर अत्याचारों के अमानवीकरण के मामले तेजी से निरंतर बढ़ते जा रहे हैं।<sup>5</sup>

मौजूदा राजनीति में मूल्यों की कोई कीमत नहीं रह गई है। यह सवाल किसी को भी परेशान नहीं करता है कि सेवा जैसे क्षेत्र राजनीति में करोड़ों-अरबों रुपये कहाँ से आ रहे हैं? इसको लेकर आम जनता में भी कोई चर्चा नहीं होती। लूट व भ्रष्टाचार को सदाचार मान लिया गया है। शुरुआती दौर में यदि कुछ सवाल उठे भी तो उसे खारिज कर उसे आवश्यकता बता दिया गया। अब तो ऐसी व्यवस्था ही कर दी गई है कि बिना अरबपति बने समाज व राजनीति में कोई स्थान ही नहीं रह गया है। सुप्रीम कोर्ट ने वर्ष 2017 में केंद्र सरकार से यह प्रश्न पूछा है कि आखिरकार कुछ सांसदों तथा विधायकों की संपत्ति में इतना अधिक इजाफा कैसे हो रहा है? उत्तर प्रदेश में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के संगठन ने बकायदा सबसे भ्रष्ट सदस्यों की सूची जारी करनी शुरू कर दी है। सुप्रीम कोर्ट ने भी न्यायिक प्रक्रिया में इस भ्रष्टाचार को चिन्हित कर कुछ न्यायाधीशों को बर्खास्त किया है। राजनीति में भ्रष्टाचार के सदाचार में बदलते जाने को मन्त्रू जी ने काफी संजीदगी के साथ

चित्रित किया है। समाज और राजनीति के पतन से उत्पन्न हुई इस महाभ्रष्टता को 'महाभोज' में मन्त्रू जी ने सिन्हा की पार्टी के माध्यम से चिन्हित किया है। वे लिखती हैं— लेकिन किसी के दिमाग में एक क्षण के लिए भी यह बात नहीं आई कि जी.आई.जी. की हैसियत का आदमी इतनी कीमती शराब कहाँ से पिला सकता है? कैसे पिला सकता है? किसी बड़े जौहरी के शो-केस की शोभा बढ़ाने वाला कम से कम बीस-पच्चीस हजार का हीरो का सेट श्रीमती सिन्हा के शरीर की शोभा बढ़ाने कैसे आ पहुँचा। नहीं, ये बाते अब गिने-चुने मूर्खों को छोड़ कर किसी को परेशान नहीं करती।<sup>6</sup>

राजनीतिक पृष्ठभूमि नहीं रहने के बाद भी मन्त्रू भंडारी इस राजनीतिक समाधान की दिशा में संकेत करती दिखती हैं। उन्होंने इस व्यवस्था के विकल्प के मॉडल का उल्लेख तो नहीं किया है, लेकिन वर्ग संघर्ष तथा दलित राजनीति को केंद्र में रख कर नई गोलबंदी का संकेत तो दिया ही है। यह गठबंधन इस दौर में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में स्पष्ट दिख रहा है। जहाँ वर्ग संघर्ष तथा दलित मुक्तिकामी शक्तियाँ कहीं न कहीं साथ में गोलबंदी करती दिखती हैं। 'महाभोज' में वे इस व्यवस्था को पूरी तरह से नंगा करती हैं। उसकी विसंगतियों को सामने लाती हैं।

'महाभोज' के दा साहब मुख्यमंत्री हैं और शुकुल बाबू विरोधी पक्ष के नेता। जोरावर राजनीतिज्ञ सुरक्षा में पलनेवाला गुंडा और हत्यारा है। सक्सेना और सिन्हा पुलिस अधिकारी हैं। दत्ता बाबू संपादक हैं। महेश शर्मा बुद्धिजीवी है, जो इस बात की खोज करने देहात पहुँचता है कि वर्ग संघर्ष क्या होता है? आम चुनाव के कुछ पूर्व ही देहात में बिसू नामक युवक की हत्या हो जाती है। इस हत्या को आत्महत्या साबित करने में मन्त्रू जी ने जितनी कुशलता के साथ कथावस्तु का निर्वाह किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

राजनीति में इस तरह अपराधी और भ्रष्ट लोगों का प्रवेश हो चुका है, इस उपन्यास में साफ-साफ चित्रित है। यह लोकतांत्रिक, समाजवादी विचारधारा पर आधारित एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें दलित और शोषित वर्ग पर पुलिस और लोकतांत्रिक समाजवादी व्यवस्था के भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के अत्याचार को दर्शाया गया है। भारतीय गाँवों में आज भी सामूहिक भावना और परस्पर सहयोग देनेवाली आकांक्षाओं का अभाव है। गाँव की परिस्थितियों और ग्रामीणों में व्यापित अज्ञानता का राजनीतिज्ञों ने भरपूर शोषण किया है। ग्रामीणों के सीधे-सहज जीवन को राजनेताओं ने अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर घिनौना बना दिया है। जिस कारण जनता के जीवन में अविश्वास, वर्गभेद, स्वार्थी भावना, असंगति, अनैतिक कार्य संबंधित गतिविधियाँ विस्तार पा रही हैं। मन्त्रू भंडारी ने इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन के इस नारकीय स्थिति का विविध रूपों में चित्रण किया है। 'महाभोज' के संबंध में डॉ विनोद सिंह ने लिखा है — हमारे देश में राजनीति सत्ता प्रतिष्ठानों पर आधिपत्य प्राप्त करने की राजनीति बन गई है। ऐसी राजनीति समाज को कभी वर्ग संघर्ष और कभी जाति संघर्ष की भूमिका की ओर अग्रसर करती है। जब राजनीति रचनात्मक हो तो वर्ग संघर्ष से रचनात्मकता

उभर कर आ जाती है। लेकिन यदि राजनीति का भी विघटन हो गया हो तो निर्माण की आशा कैसे? भारतीय राजनीति व्यक्ति को जाति समूहों में संगठित और बाँटती आई है। यह एक सुविधाजनक कार्य प्रणाली है। प्रत्येक जाति के चालाक लोग अपनी जाति के संगठन शक्ति का उपयोग कर सत्ता प्राप्त करते हैं। फिर उस जाति का उत्थान नहीं करते, बल्कि उसकी भावना और शक्ति का शोषण करते हैं।<sup>7</sup>

#### निष्कर्ष

इस प्रकार, हम देखते हैं कि अगर जन प्रतिबद्धता साहित्यकारों में न रहे तो उनका लेखन बहुत मायने नहीं रखता। केवल साहित्य में मन की अंतर्गता करते हुए चित्रित किया जाना एक तरह से बहुत अधिक सुविधाजनक होता है। हमें 'अभिव्यक्ति के खतरे' उठाने ही पड़ेंगे। मन्नू जी ने यह खतरा उठाया और राजनीतिक

चेतना का 'मास्टरपीस' उपन्यास – 'महाभोज' पाठकों को सौंपा। आज जबकि राजनीति अपने भ्रष्टतम रूपों में आ गई हो, तब राजनीति से साहित्य को परहेज नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे एक दिशा देने का कार्य करना चाहिए।

#### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संपूर्ण उपन्यास (महाभोज): मन्नू भंडारी, पृष्ठ 295
2. महाभोज, पृष्ठ— 88
3. वही, पृष्ठ—66
4. वही, पृष्ठ— 67
5. मन्नू भंडारी का कथा साहित्य: गुलाब हाड़े, पृष्ठ 294
6. महाभोज, पृष्ठ—89
7. आठवें दशक के हिंदी उपन्यास: डॉ रामविनोद सिंह, पृष्ठ—165